

नियमसार, १८२ गाथा का कलश है। मार्गसाधन का फल बताते हैं। इसमें दो अधिकार हैं न? एक तो मोक्ष का मार्ग और उसका फल सिद्धपद अथवा मुक्ति। यह मुक्ति अर्थात् सिद्ध भगवान के गुणों का वर्णन है। जिसने-आत्मा ने पूर्ण परमात्मस्वभाव का साधन अन्तर में किया, सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र्य द्वारा (किया), इसे फलस्वरूप से मुक्ति सिद्धि, सिद्धिरूपी सिद्ध होता है। मुक्ति और मुक्त दोनों एक ही हैं। सिद्ध जीव कहो या उसे मुक्ति कहो। ऐसे जीव को वह प्राप्ति होती है। जिसने आत्मा का आराधन किया है, उस सिद्ध के गुणों के स्वरूप का वर्णन है। ३०२ कलश है।

बन्धच्छेदाद्भगवति पुनर्नित्य-शुद्धे प्रसिद्धे,  
तस्मिन्सिद्धे भवति नितरां केवलज्ञानमेतत्।  
दृष्टिः साक्षादखिलविषया सौख्यमात्यन्तिकं च,  
शक्त्याद्यन्यद्गुणमणिगणं शुद्धशुद्धश्च नित्यम् ॥३०२॥

कहते हैं कि परमात्मा सिद्ध हों, उन्होंने मोक्षमार्ग आराधा, उसके फलरूप से उनमें अनन्त गुण होते हैं। गुण शब्द से (आशय) पर्याय प्रगट ली है। बन्ध के छेदन के कारण,... उन्होंने पहले क्या किया?—कि बन्ध का छेद किया। मिथ्यात्व, अव्रत, प्रमाद, कषाय और योग, यह बन्ध (भाव है)। उसका छेद करके। (सिद्ध) ऐसा किया कि पहले उन्हें बन्ध था। बन्ध के छेदन के कारण, भगवान तथा नित्य—शुद्ध... भगवान तो सही, परन्तु यह नित्य शुद्ध। परमात्मदशा, सिद्धदशा प्रगट हुई, तब से वह नित्य शुद्ध हैं। सादि-अनन्त। उन्हें यहाँ नित्य शुद्ध कहने में आता है।

ऐसे उस प्रसिद्ध सिद्ध में... आहाहा! कहते हैं, वह तो प्रसिद्ध सिद्ध हैं। मुक्ति को

\* आत्यन्तिक=सर्वश्रेष्ठ; अनन्त।

प्राप्त सिद्ध स्वभाव को प्राप्त प्रसिद्ध हैं। जैसे संसार प्रसिद्ध है, वैसे संसार के अभाव-स्वभावरूप सिद्ध भी प्रसिद्ध हैं। समझ में आया ? ऐसे ( सिद्धपरमेष्ठी में ) सदा अत्यन्त रूप से... निरन्तर अत्यन्तरूप से यह केवलज्ञान होता है,... केवलज्ञान एक समय में तीन काल-तीन लोक को जानता है। ऐसा सिद्ध भगवान में केवलज्ञान सदा अत्यन्तरूप से होता है।

समग्र जिसका विषय है, ऐसा साक्षात् दर्शन होता है,... 'साक्षादखिलविषया' केवलदर्शन, तीन काल—तीन लोक के जो पदार्थ हैं, उन्हें सामान्य रीति से समग्र पूर्ण (देखे), ऐसा जिनका विषय है। तीन काल-तीन लोक जिसे सामान्यरूप से अभेदपने दिखाई दे, ऐसा उस दर्शन का विषय है। केवलदर्शन। ऐसा साक्षात् दर्शन होता है, आत्यन्तिक सौख्य होता है... सर्वश्रेष्ठ; अनन्त। जिन्हें आनन्द होता है। संसारदशा में अकेला दुःख है। मोक्षमार्ग की दशा में किंचित् आनन्द है और किंचित् दुःख की अवस्था भी है। पूर्ण आनन्द नहीं है। सिद्ध में पूर्ण आनन्द, अनन्त आनन्द है। सर्वश्रेष्ठ आनन्द है। सर्वश्रेष्ठ अर्थात् कि इस संसार का कोई सुख होगा ? वह नहीं परन्तु मोक्षमार्गी जीव का आनन्द जो है, उसकी अपेक्षा सर्वश्रेष्ठ आनन्द है। सम्यग्दर्शन में आनन्द की शुरुआत हो जाती है। समझ में आया ?

भगवान अनन्त आनन्द, अनन्त ज्ञान, दर्शन और वीर्य चतुष्टय से भरपूर पदार्थ है। वस्तु है न ? वस्तु है तो उसका स्वभाव होता है न ? स्वभाव होता है, उसे मर्यादा क्या ? अनन्त ज्ञान-दर्शन और अनन्त वीर्य जिसमें-आत्मा में पड़े हैं, ऐसा जिसने साधन किया। एकाग्रता की, उसे अनन्त सुख सर्वोत्कृष्ट प्रगट होता है। समझ में आया ? सम्यग्दर्शन में भी धर्म की शुरुआत धर्म करनेवाले को अतीन्द्रिय आनन्द आता है, ऐसा कहते हैं। परन्तु वह अपूर्ण आनन्द है। समझ में आया ? और इसके साधनरूप से साधकर पूर्ण दशा प्रगट हुई—सिद्ध परमात्मा, वह तो अनन्त सर्वश्रेष्ठ सुख को प्राप्त हैं। ऐसा सुख जगत में उनके अतिरिक्त अन्यत्र नहीं हैं। लो ! यह सुखी तो सिद्ध को सुखी कहते हैं। पैसेवाले, लड़केवाले, इज्जतवाले नहीं ? कहो, कहाँ गये तेरे दादा ? समझ में आया इसमें ? दुनिया सुखी कहती है न ? सब पागल कहते हैं। आहाहा !

.... आता है न कुछ ? कि सुख तो अनन्त मोक्ष में है। इसलिए मोक्ष का साधन

करना, वह जीव को हितकर और श्रेयकर है। बाकी सब धूल-धाणी है। ऐसा सर्वोत्कृष्ट सिद्ध सम्यग्दर्शन से प्रगट होने पर बारहवें (गुणस्थान में) आनन्द होता है। परन्तु सिद्ध जैसे पूर्ण अनन्त आनन्द अव्याबाध (आनन्द) प्रगट होता है। समझ में आया ? आठों ही कर्मों का फल दुःख कहा है न ? वहाँ तो आठों का ही अभाव हो गया है। परिपूर्ण सर्वोत्कृष्ट आनन्द, पूर्ण अतीन्द्रिय आनन्द का अनुभव, ऐसे सिद्ध को अनन्त आनन्द होता है।

कहते हैं तथा शुद्ध-शुद्ध ऐसा वीर्यादिक अन्य गुणरूपी मणियों का समूह होता है। जिसकी पर्यायें सब अनन्त गुणों की शुद्ध-शुद्ध हो गयी हैं। वीर्य अर्थात् पुरुषार्थ। वीर्यादिक अन्य गुणरूपी मणियों का समूह होता है। अन्य गुणोंरूपी मणि का समूह— ढेर होता है वहाँ। आहाहा! कहो, समझ में आया ? इसे परमात्मदशा या मुक्तदशा या सिद्धदशा अथवा सिद्धपरमेष्ठी कहा जाता है। वह आत्मा का पूर्ण शुद्ध पवित्र पद, वह सिद्धपद है। समझ में आया ?

गाथा-१८३

णिष्वाणमेव सिद्धा सिद्धा णिष्वाणमिदि समुद्दिष्टा ।  
कम्म-विमुक्को अप्पा गच्छइ लोयग-पज्जंतं ॥१८३॥

निर्वाणमेव सिद्धाः सिद्धाः निर्वाणमिति समुद्दिष्टाः ।  
कर्म-विमुक्त आत्मा गच्छति लोकाग्र-पर्यन्तम् ॥१८३॥

सिद्धिसिद्धयोरेकत्वप्रतिपादनपरायणमेतत् ।

निर्वाणशब्दोऽत्र द्विष्टो भवति । कथमिति चेत्, निर्वाणमेव सिद्धा इति वचनात् । सिद्धाः सिद्धक्षेत्रे तिष्ठन्तीति व्यवहारः, निश्चयतो भगवन्तः स्वस्वरूपे तिष्ठन्ति । ततो हेतोर्निर्वाणमेव सिद्धाः सिद्धा निर्वाणं इत्यनेन क्रमेण निर्वाणशब्दसिद्धशब्दयोरेकत्वं सफलं जातम् ।

अपि च यः कश्चिदासन्नभव्यजीवः परमगुरुप्रसादासादितपरमभावभावनया सकल-कर्मकलङ्कपङ्कविमुक्तः स परमात्मा भूत्वा लोकाग्रपर्यन्तं गच्छतीति ।

निर्वाण ही तो सिद्ध है, है सिद्ध ही निर्वाण रे ।  
हो कर्म से प्रविमुक्त आत्मा पहुँचता लोकान्त रे ॥१८३॥

अन्वयार्थः [ निर्वाणम् एव सिद्धाः ] निर्वाण ही सिद्ध हैं और [ सिद्धाः निर्वाणम् ] सिद्ध वह निर्वाण है [ इति समुद्दिष्टाः ] ऐसा ( शास्त्र में ) कहा है । [ कर्मविमुक्त आत्मा ] कर्म से विमुक्त आत्मा [ लोकाग्रपर्यन्तम् ] लोकाग्र पर्यन्त [ गच्छति ] जाता है ।

टीका : यह, सिद्ध और सिद्ध के एकत्व के प्रतिपादन सम्बन्ध में है ।

निर्वाण शब्द के यहाँ दो अर्थ हैं । किस प्रकार ? 'निर्वाण ही सिद्ध हैं' ऐसा ( शास्त्र का ) वचन होने से । सिद्ध सिद्धक्षेत्र में रहते हैं, ऐसा व्यवहार है; निश्चय से तो भगवन्त निज स्वरूप में रहते हैं; उस कारण से 'निर्वाण ही सिद्ध हैं और सिद्ध, वह निर्वाण है' ऐसे इस प्रकार द्वारा निर्वाणशब्द का और सिद्धशब्द का एकत्व सफल हुआ ।

तथा, जो कोई आसन्नभव्य जीव परमगुरु के प्रसाद द्वारा प्राप्त परमभाव की भावना द्वारा सकल कर्मकलंकरूपी कीचड़ से विमुक्त होते हैं, वे परमात्मा होकर लोकाग्रपर्यन्त जाते हैं।

गाथा - १८३ पर प्रवचन

१८३ (गाथा)।

णिव्वाणमेव सिद्धा सिद्धा णिव्वाणमिदि समुद्धिद्धा ।  
कम्म-विमुक्को अप्पा गच्छइ लोयग्ग-पज्जंतं ॥१८३॥  
निर्वाण ही तो सिद्ध है, है सिद्ध ही निर्वाण रे ।  
हो कर्म से प्रविमुक्त आत्मा पहुँचता लोकान्त रे ॥१८३॥

उपादान से पहले बात ली है।

**टीका :** यह, सिद्धि... सिद्धि अर्थात् मुक्ति। और सिद्ध ( आत्मा ) के एकत्व के प्रतिपादन सम्बन्ध में है। मुक्ति की पर्याय और सिद्ध दोनों एकत्व हैं। दोनों भिन्न नहीं हैं। मुक्ति ऊपर है और सिद्ध नीचे हैं या बाहर हैं, ऐसा नहीं है। — ऐसा कहते हैं। सिद्ध की पूर्ण दशा वही मुक्ति है और वह स्वयं मुक्त जीव। दोनों अभेद हैं।

**मुमुक्षु :** ...

**पूज्य गुरुदेवश्री :** अभेद ही है। अभेद है अर्थात् ? भिन्न चीज़ नहीं है। जैसे आत्मा और दूसरे परमाणु भिन्न हैं, ऐसा नहीं है। बाकी है तो पर्याय पर्याय की। यहाँ तो मुक्ति और मुक्त जीव की दशा, सिद्धि और सिद्ध पर्याय दोनों एक ही हैं, ऐसा कहना है। सिद्ध की पर्याय और मुक्ति दोनों एक ही है। मुक्ति ऊपर होती है, रहते हैं, ऐसा कहना वह व्यवहार है, ऐसा कहते हैं। अपने में ही मुक्ति है। समझ में आया ? सिद्ध की पर्याय की पूर्णता, वह मुक्ति, वह मुक्त जीव की दशा। समझ में आया ?

**निर्वाण शब्द के यहाँ दो अर्थ हैं। किस प्रकार ? 'निर्वाण ही सिद्ध हैं'... लो, ठीक ! यह निर्वाण, वह सिद्ध की पर्याय है। निर्वाण हुआ, वह सिद्ध की पर्याय है। वह सिद्ध है। ऐसा सिद्ध से लेना है न। 'निर्वाण ही सिद्ध हैं'... परिपूर्ण शान्ति प्रगट हुई, वही**

सिद्ध है। निर्वाण अलग क्षेत्र है और सिद्ध की पर्याय का अलग क्षेत्र है, ऐसा नहीं है – ऐसा कहना है। ऐसा ( शास्त्र का ) वचन होने से। सिद्ध सिद्धक्षेत्र में रहते हैं, ऐसा व्यवहार है,.... सिद्ध भगवान सिद्धक्षेत्र में रहते हैं, वह व्यवहार है। वे अपनी मुक्तदशा में ही रहते हैं। सिद्ध मुक्ति में रहते हैं। आहाहा!

**मुमुक्षु :** .....

**पूज्य गुरुदेवश्री :** यह सिद्ध पर्याय, पर्याय मुक्ति है, वही उसकी पर्याय है, वही उसका ऐसा कि स्थान है। सिद्ध की पर्याय, वही मुक्ति, ऐसा कहना है। वह निर्वाण। निर्वाण कोई दूसरी चीज़ है और मुक्त पर्याय कोई दूसरी चीज़ है, ऐसा नहीं है। सिद्ध लिये हैं न? सिद्ध की पर्याय।

सिद्ध सिद्धक्षेत्र में रहते हैं, ऐसा व्यवहार है, निश्चय से तो भगवन्त निज स्वरूप में रहते हैं;.... बस, यह... जैसे यहाँ संसारदशा इसकी पर्याय का ही स्वरूप है, वैसे मुक्त दशा, मुक्ति, उसकी पर्याय का ही स्वरूप है। ये ऊपर रहते हैं, इसलिए मुक्ति है, ऐसा है नहीं। अन्तिम गाथाएँ हैं न, इनमें सबका वर्णन करते हैं। उस कारण से निर्वाण ही सिद्ध हैं... देखो! निर्वाण पद पूर्ण शान्ति और पूर्ण कषाय का शान्त होकर अकषाय पर्याय हुई, वही सिद्ध है। और सिद्ध वह निर्वाण है... सिद्ध की पर्याय, यह निर्वाण है। समझ में आया ?

ऐसे इस प्रकार द्वारा निर्वाणशब्द का और सिद्धशब्द का... सिद्ध तो पर्यायरूप हुए न? सिद्ध का जीव है, वह दूसरी चीज़ है। सिद्ध की जो पर्याय है, वही निर्वाण है। निर्वाण, वह सिद्ध। समझ में आया? ऐसा कहते हैं न, भगवान आत्मा मुक्ति को प्राप्त हुआ। अर्थात् मुक्ति कहीं होगी। ऐसे पाये होंगे? भगवान सिद्धक्षेत्र को प्राप्त हुए। वह क्षेत्र नहीं। अपनी पूर्ण पर्याय को प्राप्त हुए, वह उनका क्षेत्र है। समझ में आया? निर्वाणशब्द का और सिद्धशब्द का एकत्व सफल हुआ। लो! दोनों एकत्व हैं, भिन्न हैं नहीं।

अब यह टीकाकार श्लोक डालते हैं। कम्म-विमुक्को अप्पा गच्छइ लोयगग-पज्जंतं। ऐसा है न? तथा, जो कोई आसन्नभव्य जीव... जिसे अब मोक्ष नजदीक है। संसार का किनारा आ गया है। ऐसे आसन्न अर्थात् नजदीक। जिसकी भव्यता नजदीक है। जिसकी मुक्ति होने की योग्यता एकदम निकट है। समझ में आया? ऐसे आसन्नभव्य जीव परमगुरु के प्रसाद द्वारा प्राप्त... गुरु ने उसे ऐसा कहा था कि तू पूर्णानन्द का नाथ है,

उसकी आराधना कर। अर्थात् उसे परमगुरु के प्रसाद द्वारा, प्रसादी यह कही उनने। तेरा भगवान पूर्ण शान्ति, आनन्द से भरपूर पदार्थ है। स्वभाववान है। उसका स्वभाव पूर्ण है, उसका आराधन कर। अर्थात् उसके प्रसाद द्वारा प्राप्त परमभाव की भावना... देखा! ऐसा उन्होंने कहा था, वैसा उसने किया।

**परमभाव की भावना...** परमभाव ऐसा पारिणामिक ज्ञायक त्रिकाली स्वभाव, शुद्ध आनन्द ध्रुवतत्त्व, उसकी भावना अर्थात् एकाग्रता। लो, इस भावना में निश्चय मोक्षमार्ग डाल दिया। भगवान पूर्ण स्वरूप, अनन्त ज्ञान-दर्शन आनन्द से भरपूर परमभाव की भावना। पुण्य-पाप की और व्यवहार की भावना नहीं, ऐसा कहते हैं। और भावना शब्द से कल्पना और चिन्तवना, ऐसा नहीं। अर्थ तो ऐसा करेंगे इसमें। निज भावना... मेरी निज भावना के लिये मैंने बनाया है। टीका में कहा निज भावना अर्थात् अशुभ वंचनार्थे। बनाना है सही न... ऐसा है, इसलिए जरा ऐसा अर्थ लिया। नहीं तो भावना का अर्थ तो स्वरूप की एकाग्रता है। समझ में आया ?

भाव की भावना। उस परमभाव की भावना वापस। भाव तो पर्याय को भी कहते हैं, शुभभाव को भी भाव कहते हैं, निर्मल पर्याय को भाव कहते हैं, गुण को भाव कहते हैं और द्रव्य को भी भाव कहते हैं। यहाँ परमभाव त्रिकाली स्वभावभाव नित्यानन्द प्रभु, वह परमभाव—वस्तु, उसकी भावना। उसकी सन्मुखता की एकता, वह मोक्ष का मार्ग है। वापस परमगुरु सर्वज्ञ भी कहलावे और दूसरे गुरु को भी परमगुरु कहा जाता है। परन्तु उनके कहने का आशय यह था, ऐसा कहते हैं। यह आशय उन्होंने आराधन किया। समझ में आया ?

**परमभाव की भावना द्वारा...** पूर्णानन्द का नाथ भगवान आत्मा... उसका स्वरूप कहीं दुःखरूप होगा ? दुःख तो विकृत है, वह अवस्था में होता है। स्वभाव में नहीं होता। स्वभाव परम अतीन्द्रिय अनन्त-अनन्त... ऊपर कहा है न ? आत्यन्तिक सुख प्रगट हुआ, सर्वश्रेष्ठ। वह अन्दर था। पूर्ण सुख, पूर्ण आनन्द—ऐसा उसका स्वभाव, उसकी भावना—एकाग्रता की। यहाँ तो निश्चय मोक्षमार्ग से मुक्ति होती है, ऐसा कहा है। व्यवहार हेतु है न ? पण्डितजी ! नियत का हेतु।

**मुमुक्षु :** नियत या उपादान ?

पूज्य गुरुदेवश्री : उन्होंने तो एक ही बात की है, यह उन्हें-कितनों को सुहाता नहीं है। सुन्दर मार्ग में डाला था। अब इसमें डालेंगे। पहले डाला है। सुन्दर मार्ग—निश्चय और व्यवहार दो सुन्दर मार्ग हैं। परन्तु वापस प्राप्ति निश्चय से होती है, ऐसा नीचे कहेंगे। समझ में आया ? है न यह ? कितना है यह ? अभेद सर्वज्ञ वीतरागमार्ग की निन्दा करता है।

देखो ! उन स्वरूप विकल ( स्वरूप प्राप्तिरहित ) जीवों के कुहेतु-कुदृष्टान्तयुक्त कुतर्क वचन सुनकर जिनेश्वर प्रणीत शुद्धरत्नत्रय मार्ग के प्रति, हे भव्य ! अभक्ति नहीं करना। वापस वहाँ यह लिया। देखा ! १८९ ( गाथा की टीका )। कहा जाता है ऐसा कि पापक्रिया की निवृत्ति जिसका लक्षण है, ऐसा भेदोपचार रत्नत्रय—व्यवहाररत्नत्रय और अभेद उपचार रत्नत्रयात्मक—निश्चय स्वभाव के आश्रय से प्रगट हुई दशा, वह अभेद उपचार। रत्नत्रय, भेद पड़ा इस अपेक्षा से।

सर्वज्ञ वीतराग के मार्ग की निन्दा करते हैं। ऐसे की कोई निन्दा करे, अरे ! मेरे स्वार्थीया अकेले, हमारा करते हैं, हमारा करते हैं, हम किसी का करते नहीं। व्यवहार से करने का हमारे तो नहीं आता। आये, उसे जाननेयोग्य है। किसी का करना नहीं। समझ में आया ? यह गौशाला का करे, दान, नाम दे, तब काका कहलाये, नहीं तो काका किस प्रकार कहलाये ? करते होंगे या नहीं ? नहीं किया अभी तक ? आहाहा ! लोग कहते हैं कि यह तो स्वार्थ के पुतले। लो ! हम किसी का कर नहीं सकते, ऐसा करके छूट जाते हैं पर का करने में। हम किसी का कुछ नहीं कर सकते। ऐसे कर सकते ही नहीं। ऐसा करके पर से पृथक् पड़ने का उन्होंने ठीक खोजा है। आहाहा ! ठीक है न ? दान है, वह पुण्य है; धर्म नहीं। एक व्यक्ति ने और ऐसा कहा। ठीक खोज निकाला कि दान करने में पुण्य है, धर्म नहीं। इसलिए ऐसा पुण्य न करे। अनेक प्रकार के लोग हैं। आहाहा !

यहाँ तो दूसरा कहना कि दोनों को सुन्दर कहा, परन्तु वापस उन स्वरूप विकल ( स्वरूप प्राप्तिरहित ) जीवों के कुहेतु-कुदृष्टान्तयुक्त कुतर्क वचन सुनकर जिनेश्वर प्रणीत शुद्धरत्नत्रय मार्ग के प्रति, ... शुद्धरत्नत्रय मार्ग के प्रति हे भव्य ! अभक्ति नहीं करना। वह ज्ञान कराया साथ में। समझ में आया ? भगवान आत्मा अपने स्वार्थ का साधनेवाला है, भाई ! पर का कुछ कर नहीं सकता। लोगों को पर का करे तो बहुत अच्छा लगता है। बहुतों की सेवा करते हैं, इन्होंने बहुतों की सेवा की है। धूल भी नहीं की है,



सुन न! सेवा किसकी करे? देश-सेवा, कुटुम्ब-सेवा, जाति-सेवा, ग्राम-सेवा, गौशाला में पशु की सेवा। कहो, समझ में आया?

**मुमुक्षु :** ऐ...

**पूज्य गुरुदेवश्री :** यही कहता हूँ। की जा सकती है और यह इनकार करते हैं, इसलिए अब करेंगे नहीं। कौन करे? भाई! परन्तु लोगों को अच्छा बहुत लगता है, हों! हम तो तुम्हारे सेवक हैं। सही अवसर पर हम तो सेवा करने खड़े हैं। आहाहा! इनको बड़ी पदवी दो—सेवाभावी की। अरे! ऐसा का ऐसा अज्ञानी अनादि से ठगा जाता है। किसकी सेवा करे?

यहाँ तो कहते हैं कि उसने ज्ञान की कभी सेवा नहीं की। यह आता है न १७-१८वीं गाथा में। किसी ने पूछा है, महाराज! यह ज्ञान और आत्मा तो एकरूप है, भिन्न नहीं और आप कहते हो कि आत्मा की सेवा करो, ज्ञान की सेवा करो। वह तो अभेद है, उसमें सेवा किसकी करना? पर की सेवा की बात तो है नहीं। परन्तु यह स्वयं आत्मा और ज्ञान। वस्तु स्वयं, उसका स्वभाव ज्ञान, उसकी सेवा किसकी? वह तो अभेद है। भाई! तूने अनन्त काल में आत्मा के ज्ञान की सेवा नहीं की है। आहाहा! ज्ञान और आत्मा एकरूप है, ऐसी तूने कभी सेवा नहीं की है। आहाहा! यह सेवा कही है, लो! ऐई! पण्डितजी! कैसे हमारे क्या कहे? पण्डितजी को याद है। योगी अर्थात् अगम्यम्। वह कौन सी? यह। वह सेवा नहीं। आहाहा! कितनी संस्था के प्रमुख, कितने संस्था के नायक... आहाहा! ऐसा करके लोगों के गुणगान करते हैं। ऐसा होगा या नहीं तुम्हारे? गुलाबभाई! बड़े... बहुत पढ़ते हैं। बड़े हों तो प्रसिद्ध हैं न कहीं! प्रसिद्ध होना चाहिए न, यह इसमें कुछ सेवा की और यहाँ ऐसा किया, अमुक, अमुक। यह अनेक की बात है न! यहाँ तो दृष्टान्त दिया है। सेवाभावी हैं। भाई! कैसा अच्छा लगता है? परन्तु सेवा किसकी करे? सुन न!

इस शरीर के रजकण की पर्याय कर नहीं सकता, सेवा करे किसकी? इस राग की सेवा करने जाए तो मिथ्यात्व होता है। आहाहा! कहो, समझ में आया? सेवा अर्थात् ये मेरे हैं। मैं इन्हें रखूँ। दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा के भाव यह राग, इसे रखूँ, इसका नाम सेवा। मिथ्यादृष्टि है। आहाहा! मूढ़ है। अन्दर से डाँवाडोल हो गया है, ऐसा कहते हैं। अकेला स्वप्रयोजन को सिद्ध कर सके, ऐसा तत्त्व है। समझ में आया? दयामण्डली,

सेवामण्डली, ऐसे मण्डल के नाम दे और प्रमुख होना हो सामने। यह तो कहे, काम देते हैं। ओहो! उन्होंने तो सब मूल तो संस्था का अग्रदूत है। उन्हें ऐसा हो जाता है कि आहाहा! धूल भी नहीं, सुन न! डॉक्टर-बॉक्टर नहीं न? डॉक्टर बहुत सेवाभावी कहलाते हैं। होवें मात्र पैसे के अर्थी। सेवाभावी है। ऑनरेडी हैं। धूल भी नहीं, सुन न, भगवान आत्मा!

यहाँ तो यह कहते हैं, देखो! समझ में आया? **आसन्नभव्य जीव...** परमभाव की भावना द्वारा। यह बात कहाँ वह तो। क्या कहा? पूर्णानन्द का नाथ भगवान सर्वज्ञ त्रिलोकनाथ तीर्थकर ने कहा, ऐसा जो आत्मा अनन्त गुण का पिण्ड, अनन्त गुण का मणिरत्न, उसकी अन्तर एकाग्रता, वह उसकी सेवा है और वह उसकी भावना है। यह सच्ची सेवा और सच्ची भावना है। बाकी सब गप्प है। समझ में आया? अपना नाम रखने के लिये संसार के अधिपतिरूप से कहलाना हो तो बहुतों का जरा नाम रखे। भले बारह महीने में दो दिन जाता हो परन्तु थोड़ा-थोड़ा नाम रखे। बहुत संस्था के सेवक थे। सेवक थे अर्थात् दूसरा कुछ, अधिपति थे। मार डाला। उसके प्रमुख थे। आहाहा! अरे! भगवान! यह भ्रमणा कैसी है?

यहाँ तो परम प्रभु आत्मा सर्वज्ञस्वभाव से विराजमान अनन्त आनन्द से शोभित प्रभु, ऐसा जो उसका त्रिकाल परमभाव, उसमें पर्याय अर्थात् एकाग्रता करना, यह भावना (है) और इससे मुक्ति है। समझ में आया? उसमें ऐसा आता है। श्वेताम्बर में आचार्य होवें न, तीसरे भव से मुक्ति होती है। साधु को देरी लगती है। अकेला व्यवहार ही डाला है। भगवती (सूत्र) में ऐसा आता है। तीसरे के लिये आचार्य के लिये प्रयत्न करते हैं न बहुत? आचार्य की पदवी दे तो शास्त्र का अर्थ करे, तीसरे भव में मोक्ष जाए। अकेले साधु तीसरे में न जाए। यहाँ तो कहते हैं कि आचार्यपद छोड़े, तब साधुपद में आवे, तब मुक्ति होती है। आहाहा! जगत को अकेली प्रवृत्ति की महिमा और यह देखे न! आहाहा! भगवान की स्तुति करता हो, भगवान को वन्दन करता हो, सात-आठ-दस बार। जय महाराज... जय महाराज... जय महाराज... तब ऐसा लगता है कि यह कुछ करता है। दिखता है। आहाहा! भाई! वह तो प्रवृत्ति की-जड़ की दशाएँ हैं। उनके परिणाम में कुछ होवे तो राग की मन्दता। वह प्रवृत्ति के-पुण्य के परिणाम हैं। समझ में आया? वह आत्मा की भावना नहीं है। आहाहा!

यहाँ तो ऐसा कहना है कि परम गुरु ने ऐसा कहा था कि और ऐसा उन्होंने किया। यह कहने योग्य है, इसके अतिरिक्त दूसरी किसी चीज़ की महिमा करने योग्य नहीं है। आहाहा! आसन्नभव्य जीव... आहाहा! जिसके संसार का किनारा निकट आ गया है। कुन्दकुन्दाचार्य के लिये कहा है न पहला? ओहोहो! प्रवचनसार (में कहा है)। कुन्दकुन्दाचार्य, जिनके संसार का किनारा आ गया है। आहाहा! ऐसे परमभाव की भावना करनेवाले। समझ में आया? यह प्रवचनसार के कर्ता हैं, ऐसा बतलाना है न!

आसन्नभव्य जीव... 'कम्मविमुक्को अप्पा' इसकी व्याख्या करते हैं। तीसरे पद की। कहते हैं कि कर्म से मुक्त कैसे होते हैं? कि परमभाव की भावना द्वारा... एक ही सिद्धान्त और एक ही तत्त्व। आनन्द का नाथ भगवान ज्ञान का सागर, उसमें एकाग्र होने की भावना, वही मोक्ष का मार्ग और वही मुक्ति का उपाय है। सकल कर्मकलंकरूपी कीचड़ से विमुक्त होते हैं,... लो! जो कोई आत्मा परमभाव ऐसा जो आत्मा का त्रिकाली स्वभाव, शुद्धभाव, पवित्रभाव, आनन्दभाव ऐसा जो त्रिकाली आत्मा का परमभाव, उसकी भावना—उसकी एकाग्रता (करता है), उसके द्वारा सकल कर्मकलंकरूपी कीचड़ से विमुक्त होते हैं,... आठों कर्मों का रहितपना इस भावना से होता है। कहो, समझ में आया? मार्ग की खबर नहीं होती और भटकाभटक करता है। यहाँ से मिलेगा और यहाँ से मिलेगा। शास्त्र में ऐसा आता है, त्याग के अर्थ में (आता है कि) पुस्तक देना, मुनि को त्याग करना। धर्म... अर्थात् समझ ले। परन्तु क्या अपेक्षा है? स्वभाव के आश्रय से इतना राग का अभाव होता है, इस अपेक्षा से त्याग की नास्ति से बात की है। पुस्तक देना, त्यागधर्म यह है। ....आहाहा! दस प्रकार के धर्म में से यह पुस्तक देना, वह धर्म हो गया। लिखा है, तब तो यह बात चलती है। उसमें लिखा हुआ है—पद्मनन्दिपंचविंशति में, स्वामी कार्तिकेयानुप्रेक्षा में। आहाहा! ऐई...! लिखा है, वह मिथ्या होगा? उसका अर्थ समझे बिना। लिखा है, क्या लिखा? लिखा है, उसका सुमेल रहा नहीं। अर्थ करने को समझते नहीं।

यहाँ तो कहते हैं, भगवान आत्मा एकस्वरूप प्रभु त्रिकाल है, उसकी अन्तर की एकाग्रता की सन्मुखता की एकाग्रता, वह एक ही मोक्ष का मार्ग और भावना है। वीतरागमार्ग में दूसरी कोई चीज़ है नहीं। दूसरा तो कुछ है ही नहीं। समझ में आया? यह वहाँ डाला

था। 'कम्मविमुक्को अप्पा' उसमें डाला था, परन्तु मुक्त कैसे हुए? वे उपवास करके, मासखमणा करके, अट्टाई करके कर्म की निर्जरा हुई, धर्म को प्राप्त हुए, ऐसा होगा? तेरे अपवास-बपवास कहाँ थे? बाहर का-आहार का त्याग, वह तो अपने आप भिन्न ही पड़ा हुआ है। वह था कब कि छोड़े? राग को द्रव्यस्वभाव में ग्रहण करता कब था? आहाहा! मात्र द्रव्यस्वभाव में एकाग्र होने पर राग छूट जाता है, इसलिए कर्म छूट जाता है। उसे यहाँ आत्मा छोड़ता है, ऐसा कहने में आता है। आहाहा! वीतरागमार्ग निरालम्बी मार्ग है, जिसे व्यवहार का आलम्बन नहीं है।

ऐसा कर्मकलंकरूपी कीचड़ से विमुक्त होते हैं,... कर्म कलंकरूपी कादव। कर्म का कलंक है उसे। आहाहा! ऐसा जो कादव। वि-मुक्त—पूर्ण विशेष मुक्त होता है। वे परमात्मा होकर... वे परमात्मा सिद्ध होकर लोकाग्रपर्यन्त जाते हैं। लोक के अन्त में जाएँ, यह व्यवहार कहलाता है। है तो वहाँ अपने में और अपने में। सिद्ध हैं वे अपने में। लोकाग्र में जाते हैं। लोक के अग्र में सिद्ध भगवान परक्षेत्र के लोक के अग्र में जाते हैं, यह व्यवहारक्षेत्र बतलाया है। निश्चय से तो अपनी पर्याय में ही परिणम रहे हैं। आकाश के क्षेत्र में हैं, यह कहना, वह तो एक व्यवहार है। आहाहा! लोकाग्र—लोक के अग्र छोर तक जाते हैं, ऐसा कहते हैं। लोक का छोर हो, वहाँ जाते हैं। अनन्त सिद्ध अपने आनन्द में वहाँ विराजते हैं। आहाहा!

### श्लोक-३०३

[ अब, इस १८३वीं गाथा की टीका पूर्ण करते हुए टीकाकार मुनिराज श्लोक कहते हैं: ]

( मालिनी )

अथ जिनमतमुक्तेर्मुक्तजीवस्य भेदं,  
क्वचिदपि न च विद्मो युक्तिश्चागमाच्च ।  
यदि पुनरिह भव्यः कर्म निर्मूल्य सर्वं,  
स भवति परम-श्री-कामिनी-कामरूपः ॥३०३॥

( वीरछन्द )

जिनमत संमत मुक्ति में अरु मुक्तजीव में भेद नहीं ।  
 युक्ति से अथवा आगम से भेद न जानें हम कुछ भी ॥  
 और लोक में कोई भव्यजन सकल कर्म निर्मूल करे ।  
 तो वह परम श्रीरूपी कामिनी का प्रियतम वल्लभ हो ॥३०३॥

[ श्लोकार्थः— ] जिनसम्मत मुक्ति में और मुक्त जीव में हम कहीं भी युक्ति से या आगम से भेद नहीं जानते । तथा, इस लोक में यदि कोई भव्य जीव सर्व कर्म को निर्मूल करता है, तो वह परमश्रीरूपी ( मुक्तिलक्ष्मीरूपी ) कामिनी का वल्लभ होता है ।३०३।

श्लोक -३०३ पर प्रवचन

[ अब, इस १८३वीं गाथा की टीका पूर्ण करते हुए टीकाकार मुनिराज श्लोक कहते हैं: ] (श्लोक) ३०३

अथ जिनमतमुक्तेर्मुक्तजीवस्य भेदं,  
 क्वचिदपि न च विद्मो युक्तितश्चागमाच्च ।  
 यदि पुनरिह भव्यः कर्म निर्मूल्य सर्वं,  
 स भवति परम-श्री-कामिनी-कामरूपः ॥३०३॥

लो, यहाँ जीव लिया है ।

श्लोकार्थ : जिनसम्मत मुक्ति में और मुक्त जीव में... मुक्त जीव । जिन सम्मत वीतराग ने कही हुई मुक्ति । सर्वज्ञ परमेश्वर तीर्थकरदेव ने कही हुई सिद्धदशा / मुक्ति में और मुक्त जीव में हम कहीं भी युक्ति से या आगम से भेद नहीं जानते । यह मुक्ति यही और सिद्धपर्याय भी यह । तथा, इस लोक में यदि कोई भव्य जीव... इस लोक में यदि कोई भव्य जीव सर्व कर्म को निर्मूल करता है,... भगवान आत्मा का ध्यान करके सर्व कर्म को निर्मूल करता है । मूल से उखाड़ डालता है, कहते हैं, तो वह परमश्रीरूपी ( मुक्तिलक्ष्मीरूपी ) कामिनी का वल्लभ होता है । तो उसे मुक्तरूपी दशा एक समय भी नहीं छोड़ती, ऐसा कहते हैं । समझ में आया ?

यह स्त्रियाँ तो आयी और गईं। कितनी ? इन्द्र के एक भव में आयुष्य दो सागर और उसकी ( इन्द्राणी की ) अल्पस्थिति होती है। उसकी स्थिति में कितनी आती है, मरती है और जाती है, मरती है और जाती है। वह तो दो सागर एक ही है। इन्द्राणी की स्थिति अल्प होती है। ऐसे-ऐसे तो कितने दस क्रोड़ाक्रोड़ी पल्योपम का तो एक सागरोपम ( होता है )। उसकी बहु तो पचपन की बड़ी हो तो। ऐसी स्त्रियाँ उसकी अस्ति में करोड़ों मरकर जाती हैं और आती है। वे कहीं बल्लभा नहीं कहलाती। बल्लभा तो एक समय छोड़ती नहीं, उसे बल्लभ कहते हैं। ऐसा कहते हैं न, देखो !

अपने स्वरूप को प्राप्त होने पर आत्मा की मुक्तदशा हुई, वह परिणति एक समय भी उसे छोड़ती नहीं है। वह उसकी वास्तविक कामिनी है। आहाहा ! कामिनी का बल्लभ होता है। ऐसा है न ? ऐसे शब्द बहुत बार आते हैं। बहुत कलशों में आ गये।

१८३ ( गाथा पूरी ) हुई।

गाथा-१८४

जीवाण पुग्गलाणं गमणं जाणेहि जाव धम्मत्थी ।  
धम्मत्थि-कायभावे तत्तो परदो ण गच्छंति ॥१८४॥

जीवानां पुद्गलानां गमनं जानीहि यावद्धर्मास्तिकः ।  
धर्मास्ति-कायाभावे तस्मात्परतो न गच्छन्ति ॥१८४॥

अत्र सिद्धक्षेत्रादुपरि जीवपुद्गलानां गमनं निषिद्धम् । जीवानां स्वभावक्रिया सिद्धिगमनं, विभावक्रिया षट्कापक्रमयुक्तत्वं, पुद्गलानां स्वभावक्रिया परमाणुगतिः, विभावक्रिया द्व्यणुकादिस्कन्धगतिः । अतोऽमीषां त्रिलोकशिखरादुपरि गतिक्रिया नास्ति, परतो गतिहेतो-धर्मास्तिकायाभावात्; यथा जलाभावे मत्स्यानां गतिक्रिया नास्ति । अत एव यावद्धर्मास्ति-कायस्तिष्ठति तत्क्षेत्रपर्यन्तं स्वभावविभावगतिक्रियापरिणतानां जीवपुद्गलानां गतिरिति ।

जानो वहीं तक जीव पुद्गल-गति, जहाँ धर्मास्ति है ।  
धर्मास्तिकाय अभाव में आगे गमन की नास्ति है ॥१८४॥

अन्वयार्थः [ यावत् धर्मास्तिकः ] जहाँ तक धर्मास्तिकाय है, वहाँ तक [ जीवानां पुद्गलानां ] जीवों का और पुद्गलों का [ गमनं ] गमन [ जानीहि ] जान; [ धर्मास्तिकायाभावे ] धर्मास्तिकाय के अभाव में [ तस्मात् परतः ] उससे आगे [ न गच्छंति ] वे नहीं जाते ।

टीका : यहाँ, सिद्धक्षेत्र से ऊपर जीव-पुद्गलों के गमन का निषेध किया है ।

जीवों की स्वभावक्रिया सिद्धिगमन ( सिद्धक्षेत्र में गमन ) है और विभावक्रिया ( अन्य भव में जाते समय ) छह दिशा में गमन है; पुद्गलों की स्वभावक्रिया परमाणु की गति है और विभावक्रिया \*द्वि-अणुकादि स्कन्धों की गति है । इसलिए इनकी

\* द्वि-अणुकादि स्कन्ध=दो परमाणुओं से लेकर अनन्त परमाणुओं के बने हुए स्कन्ध ।

( जीव पुद्गलों की ) गतिक्रिया त्रिलोक के शिखर से ऊपर नहीं है, क्योंकि आगे गतिहेतु ( गति के निमित्तभूत ) धर्मास्तिकाय का अभाव है; जिस प्रकार जल के अभाव में मछलियों की गतिक्रिया नहीं होती उसी प्रकार। इसी से, जहाँ तक धर्मास्तिकाय है, उस क्षेत्र तक स्वभावगतिक्रिया और विभावगतिक्रियारूप से परिणत जीव-पुद्गलों की गति होती है।

गाथा - १८४ पर प्रवचन

जीवाण पुगलाणं गमणं जाणेहि जाव धम्मत्थी ।  
धम्मत्थि-कायभावे ततो परदो ण गच्छन्ति ॥१८४॥

नीचे हरिगीत

जानो वहाँ तक जीव पुद्गल-गति, जहाँ धर्मास्ति है।  
धर्मास्तिकाय अभाव में आगे गमन की नास्ति है ॥१८४॥

देखो! पहले उपादान लिया, फिर उसमें निमित्त लिया। पहले तो लिया कि सिद्ध भगवान परमात्मा यहाँ देह में होते हैं। ( पश्चात् ) लोकाग्र में जाते हैं। आठ कर्मरहित तो यहाँ होते हैं। वह जैसे हल्की चीज़ ऊपर जाती है, उसी प्रकार यह ऊँचे लोकाग्र में जाते हैं। अपनी योग्यता ही लोकाग्र में जाने की है, लोकाग्र में रहने की। आगे धर्मास्तिकाय नहीं है, इसलिए नहीं जाते—ऐसा कहना, वह तो धर्मास्ति को सिद्ध करने के लिये है। शास्त्र में ऐसा आता है। आगे क्यों नहीं जाते? धर्मास्ति यहाँ है, ( वहाँ ) धर्मास्ति का अभाव है। रहते नहीं। इतनी ही स्थिति है। वहाँ तक ही धर्मास्ति है। लोकाग्र तक ही धर्मास्तिकाय है। उसमें यह विवाद पहले से उठा था। लो, ... आये थे न? पण्डित थे, उनके साथ देखो! धर्मास्तिकाय के अभाव से सिद्ध आगे नहीं जाते।

लो! यहाँ वह अभाव है, इसलिए गमन नहीं होता, ऐसा कहा। ऐसा ही आता है। तत्त्वार्थसूत्र में ऐसा आता है न? तत्त्वार्थसूत्र में। ' धर्मास्तिकाय अभावात् ' ऐसा ही आता है न? निमित्त समझाना है तब। ऐसा कहते हैं, काल न हो तो परिणमन नहीं होता, धर्मास्ति न हो तो गति नहीं होती। लो, अधर्मास्ति न हो तो स्थिति नहीं होती। यह तो निमित्त को सिद्ध करने की व्याख्या है।



**टीका :** यहाँ, सिद्धक्षेत्र से ऊपर जीव-पुद्गलों के गमन का निषेध किया है। लोकाग्र में सिद्ध भगवान विराजते हैं, वहाँ से आगे नहीं जाते। क्यों नहीं जाते? कि उनकी अपनी उपादान की योग्यता ही इतनी है और धर्मास्तिकाय का अभाव है। निमित्त का। समझ में आया? कितने ही ऐसा कहते हैं कि धर्मास्तिकाय का अभाव है, इसलिए सिद्ध आगे नहीं जाते, इतनी उनकी परतन्त्रता है, वरना अनेकान्त नहीं रहता। कथंचित् स्वतन्त्र, कथंचित् परतन्त्र। अभी उन्हें सिद्ध को भी परतन्त्र साबित करना है। यह अनेकान्त की व्याख्या एक पण्डित ऐसा करता है।

**मुमुक्षु :** नीचे रह जाते हैं।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** नीचे रह जाते हैं। ठीक। धर्मास्तिकाय नहीं है तो आगे नहीं जाते। इतनी परतन्त्रता नहीं? नहीं तो एकान्त हो जाएगा। अनेकान्त होना चाहिए। स्वतन्त्र कथंचित्, कथंचित् परतन्त्र। वहाँ भी परतन्त्र। परन्तु वे तो स्वतन्त्रता से ही वहाँ रहे हुए हैं। भगवान पूर्णानन्द की प्राप्ति हुई, उसमें ही रहे हुए हैं परन्तु वहाँ क्षेत्र इतना वहाँ रहने की उनकी योग्यता है। लोक का जीव है न? लोक का द्रव्य है तो लोक में रहता है। लोक का द्रव्य अलोक में जाएगा? आहाहा! इस चर्चा का बड़ा विवाद उठा है। ऐई!

कितने प्रतिशत निमित्त के? पचास प्रतिशत। और आत्मा के पचास। इस प्रकार सौ प्रतिशत होता है, ऐसी बात तब चली थी। समझ में आया? धर्मास्तिकाय ने रोका, कितने प्रतिशत? पचास। स्वयं रुका, वह पचास (प्रतिशत)। स्वतन्त्र अपना, पचास (प्रतिशत) उसके कारण से, ऐसा करके... ऐसा है ही नहीं। सौ के सौ प्रतिशत वहाँ स्वतन्त्र रहे हुए। यह बहुत डालते हैं। जहाँ हो वहाँ यह बहुत डालते हैं। देखो! सिद्धक्षेत्र से आगे नहीं जाते। धर्मास्ति नाम का निमित्त नहीं है, इसलिए (नहीं जाते)। देखो! निमित्त का प्रभाव। उन पण्डितजी को तो अब सबको सुल्टा हो गया। सुल्टी हाँ पाड़ते हैं। कहो, समझ में आया इसमें?

**जीवों की स्वभावक्रिया सिद्धिगमन ( सिद्धक्षेत्र में गमन ) है....** क्या कहा? यहाँ आत्मा भगवान पूर्णानन्द का साधन करके सिद्ध होता है। यहाँ शरीर में सिद्ध होता है। वह अब जब स्वभाविक क्रिया सिद्धि गमन, यहाँ से गमन होता है। सिद्धक्षेत्र में गमन, वह स्वभाविक क्रिया है। गमन है, इसलिए विभाविक क्रिया है—ऐसा नहीं है। कहो, समझ

में आया ? गति करते हैं न यहाँ से ? जितना गमन करे, गति करे, उतना विभाव है या नहीं ? नहीं; वह तो स्वभाव क्रिया हुई, वह गमन है। शुद्ध स्वभाव की क्रिया का वह तो गमन है। विभाव-बिभाव है नहीं। आहाहा!

**और विभावक्रिया...** नीचे ( फुटनोट में ) स्पष्टीकरण किया है। सुधारा है। कोष्ठक में ( अन्य भव में जाते समय ) छह दिशा में गमन है;... यह विभाव क्रिया। छह काय, छह काय - ऐसा करके डाला था न, उस पाठ में ऐसा था न। छह अपक्रम, उसके बदले छह काय ऐसा कर डाला था। भाई ने ऐसा कर डाला था न ? शीतलप्रसाद ने। मूल तो छह अपक्रम ऐसा है। छह काय नहीं परन्तु छह अपक्रम। छह दिशाएँ। विभाववाले संसारी जीव छह दिशा में जाते हैं। पूर्व, पश्चिम, उत्तर, दक्षिण, ऊर्ध्व और अधो—छह। छह दिशा में गमन। विभाविक क्रियावालों का छह दिशा में गमन; स्वभाविक क्रियावालों का एक ऐसा सीधा गमन। ऐसा है। इतना निकाल डालना, छह काय के क्रम से सहितपना अथवा छह काय का भ्रमण, यह निकाल डालना। निकाल डाला है ? ठीक।

( अन्य भव में जाते समय ) छह दिशा में गमन है;... अन्य भव में जाते हुए, यह कोष्ठक में ( लिखा है )। छह दिशाओं में गमन, वह विभाविक क्रिया का स्वरूप है। पुद्गलों की स्वभावक्रिया परमाणु की गति है... यह पुद्गल है न, यह जड़-मिट्टी ? उसका एक परमाणु ऐसे गति करे, वह स्वभाव क्रिया है। जैसे सिद्ध की गमन की स्वभाव क्रिया है, उसी प्रकार परमाणु की भी एक परमाणु की भी स्वभाव क्रिया है। स्वभाव क्रिया सीढ़ी है। लो ! एक परमाणु चौदह राजूलोक में ऐसे जाता है, तो भी वह स्वभाविक क्रिया है।

**मुमुक्षु :** ...

**पूज्य गुरुदेवश्री :** .... शक्ति की उसकी। वह पर्याय उसे वहाँ तक। सिद्ध तो यहाँ से होते हैं। यह सात राजूलोक होवे तो। एक परमाणु तो नीचे लो और ऊपर जाए। यहाँ तो ऐसा सिद्ध करना है कि इतना चौदह राजूलोक जाए, तो भी वह स्वभाविक क्रिया है। इतना गमन करे, इसलिए विभाविक है, ऐसा नहीं है।

**मुमुक्षु :** पूरा करे तो भी स्वभाविक ?

**पूज्य गुरुदेवश्री :** उसका वह स्वभाव ही है। एक परमाणु दूसरे क्षेत्र जाए तो वह

स्वभाव हो जाए। परमाणु की ही क्रिया स्वभाविक है। गमन करे चौदह लोक तो। ऐसा यहाँ तो (कहा है) बहुत गति इतनी बड़ी की, इसलिए विभाव होगा? समझ में आया?

वीतराग का मार्ग बहुत सूक्ष्म है। सर्वज्ञ केवली परमात्मा ने कहा हुआ स्वरूप बहुत सूक्ष्म... बहुत सूक्ष्म... परमेश्वर के अतिरिक्त कहीं नहीं हो सकता। कहाँ अन्तर कितना? अब उसे दूसरे के साथ मिलाते हैं। समन्वय करो। वह भी धर्म है और यह भी धर्म है। किसके साथ करे? इसमें दो बातें की हैं। सिद्ध को सात राजू जाने का है। सात राजू। समझ में आया यहाँ से? तो वह स्वभाविक क्रिया है। परमाणु चौदह राजू जाए तो वह स्वभाविक क्रिया है। एक प्रदेश जाए वह तो... यह तो ठेठ नरक के, सातवें नरक के पाताल में परमाणु हो तो एक समय में सिद्ध है, वहाँ चला जाता है। आहाहा! उसे खबर नहीं कि हम ऐसे जाते हैं। उसका वह स्वभाव है, तथापि इतनी गतिवान को भी शीघ्रता से इतनी गति। एक समय में तो असंख्य प्रदेश लोक के आकाश के सब, तथापि उसे स्वभाविक क्रिया कहा जाता है। विभाविक है नहीं। गमन करे, वह विभाविक, ऐसा अर्थ सच्चा है नहीं, ऐसा कहते हैं। गमन करना, वह विभाव है, यह बात सत्य नहीं है।

पुद्गलों की स्वभावक्रिया परमाणु की गति है और विभावक्रिया... अब उसमें वापस विभाव। द्वि-अणुकादि स्कन्धों की गति है। दो परमाणुओं से लेकर अनन्त परमाणुओं के बने हुए स्कन्ध। यह शरीर देखो, यह। इसकी विभाविक क्रिया है, यह। अँगुली चलती है, वह अनन्त परमाणुओं का विभाव है। अपने आप, हों! आत्मा के कारण नहीं। बहुत से रजकणों का जत्था है, इसलिए उसे विभाव कहा जाता है। एक से आगे बढ़ गये, दो हुए। दो हुए, वह विभाव...

द्वि-अणुकादि स्कन्धों की गति है। उसे विभाविक क्रिया कहा जाता है। यहाँ तो समय-समय का माप लिया है। वस्तु की स्थिति एक समय में अकेला परमाणु और सिद्ध हो, वह स्वभाविक क्रिया है। दो परमाणु और सांसारिक साथ में गमन करें, वह विभाविक क्रिया। इसलिए इनकी (जीव पुद्गलों की) गतिक्रिया त्रिलोक के शिखर से ऊपर नहीं है, ... तीन लोक से ऊपर आगे है नहीं। क्योंकि आगे गतिहेतु (गति के निमित्तभूत) धर्मास्तिकाय का अभाव है; ... लो! ठीक! निमित्त है न? (गति के निमित्तभूत) धर्मास्तिकाय का अभाव है; ... अभी एक व्यक्ति ने बहुत लिखा है। मोतीलाल ने ऐसा

सब बहुत लिखा है। देखो! यह होता है। इसके बिना यह नहीं होता, इसके बिना यह नहीं होता। निमित्त का प्रभाव है। निमित्त अकिंचित्कर मानते हैं, उनके लिये यह बात सिद्ध नहीं होती। अरे! भगवान! उन्हें यह बात बैठी होती है। अनादि की पराधीन (दृष्टि)। यह बात कही, एक समय का उसका अपना स्वतन्त्र स्वभाव है। इसीलिए यहाँ हैं और रहते हैं। जाते हैं और रहते हैं। पर के कारण से जाते हैं, और रहते हैं, ऐसा नहीं। धर्मास्तिकाय का अभाव है, लो!

जिस प्रकार जल के अभाव में मछलियों की गतिक्रिया नहीं होती; उसी प्रकार। पानी न हो तो मछली कहीं पृथ्वी पर नहीं चलती। जहाँ तक धर्मास्तिकाय है, उस क्षेत्र तक स्वभावगतिक्रिया... दृष्टान्त में भी ऐसा माने। पानी हो, वहाँ मछली गति करती है। पश्चात् नहीं कर सकती। वह तो उसकी स्थिति ही ऐसी है। गति करने की योग्यता स्वयं की होती है, तब पानी होता है। बस। यह तो वे सब शब्द हैं। गति परिणत जीव, स्थिति परिणत जीव। ऐसा है न? सर्वत्र ऐसा ही है वह। गति परिणत जीव को धर्मास्ति निमित्त, स्थिति परिणत जीव और पुद्गल को अधर्मास्ति निमित्त। क्षेत्र तक स्वभावगतिक्रिया और विभावगतिक्रियारूप से परिणत जीव-पुद्गलों की गति होती है। धर्मास्तिकाय हो, वहाँ तक स्वभाववाले परमाणु और सिद्ध, विभाववाले दो परमाणु और संसारी, इनकी गति वहाँ तक होती है। आगे नहीं होती। ऐसा भी वस्तु का स्वभाव है। ऐसा उसे बराबर जानना चाहिए।

( श्रोता : प्रमाण वचन गुरुदेव! )